मंगलाचरण

श्लोक :

*** कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौशोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौसीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः ॥1॥
भावार्थ:-कुन्दपुष्प और नीलकमल के समान सुंदर गौर एवं श्यामवर्ण, अत्यंत बलवान्, विज्ञान के धाम, शोभा संपन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदों के द्वारा वन्दित, गौ एवं ब्राह्मणों के समूह के प्रिय (अथवा प्रेमी), माया से मनुष्य रूप धारण किए हुए श्रेष्ठ धर्म के लिए कवचस्वरूप, सबके हितकारी, श्री सीताजी की खोज में लगे हुए पथिक रूप रघुकुल के श्रेष्ठ श्री रामजी और श्री लक्ष्मणजी दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों ॥1॥

*** ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥2॥
भावार्थ:-वे सुकृती (पुण्यात्मा पुरुष) धन्य हैं जो वेद रूपी समुद्र (के मथने) से उत्पन्न हुए कलियुग के मल को सर्वथा नष्ट कर देने वाले, अविनाशी, भगवान श्री शंभु के सुंदर एवं श्रेष्ठ मुख रूपी चंद्रमा में सदा शोभायमान, जन्म-मरण रूपी रोग के औषध, सबको सुख देने वाले और श्री जानकीजी के जीवनस्वरूप श्री राम नाम रूपी अमृत का निरंतर पान करते रहते हैं॥2॥

सोरठा : मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खान अघ हानि कर। जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥
भावार्थ:-जहाँ श्री शिव-पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करने वाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाए?

*** जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥
भावार्थ:-जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

श्री रामजी से हनुमानजी का मिलना और श्री राम-सुग्रीव की मित्रता

चौपाई :

*** आगें चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥1॥

भावार्थ:-श्री रघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत निकट आ गया।वहाँ (ऋष्यमूक पर्वत पर) मंत्रियों सहित सुग्रीव रहते थे। अतुलनीय बल कीसीमा श्री रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी को आते देखकर-॥1॥

*** अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बलरूप निधाना॥ धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई॥2॥

भावार्थ:-सुग्रीव अत्यंत भयभीत होकर बोले- हे हनुमान्! सुनो, ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। तुम ब्रह्मचारी का रूप धारण करके जाकर देखो। अपने हृदय में उनकी यथार्थ बात जानकर मुझे इशारे से समझाकर कह देना॥2॥

*** पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥ बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥3॥

भावार्थ:-यदि वे मन के मलिन बालि के भेजे हुए हों तो मैं तुरंत हीइस पर्वत को छोड़कर भाग जाऊँ (यह सुनकर) हनुमान्‌जी ब्राह्मण का रूप धरकर वहाँ गए और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे-॥3॥

*** को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥4॥

भावार्थ:-हे वीर! साँवले और गोरे शरीर वाले आप कौन हैं, जो क्षत्रिय के रूप में वन में फिर रहे हैं? हे स्वामी! कठोर भूमि पर कोमल चरणों से चलने वाले आप किस कारण वन में विचर रहे हैं?॥4॥

*** मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता ॥ की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥5॥

भावार्थ:-मन को हरण करने वाले आपके सुंदर, कोमल अंग हैं और आप वन के दुःसह धूप और वायु को सह रहे हैं क्या आप ब्रह्मा, विष्णु, महेश- इन तीन देवताओं में से कोई हैं या आप दोनों नर और नारायण हैं॥5॥

दोहा :

*** जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥1॥

भावार्थ:-अथवा आप जगत् के मूल कारण और संपूर्ण लोकों के स्वामी स्वयं भगवान् हैं, जिन्होंने लोगों को भवसागर से पार उतारने तथा पृथ्वी का भार नष्ट करने के लिए मनुष्य रूप में अवतार

लिया है?॥1॥

चौपाई :

*** कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥ नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहई॥1॥

भावार्थ:-(श्री रामचंद्रजी ने कहा-) हम कोसलराज दशरथजी के पुत्र हैं और पिता का वचन मानकर वन आए हैं। हमारे राम-लक्ष्मण नाम हैं, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथ सुंदर सुकुमारी स्त्री थी॥1॥

*** इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥ आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥2॥

भावार्थ:-यहाँ (वन में) राक्षस ने (मेरी पत्नी) जानकी को हर लिया। हे ब्राह्मण! हम उसे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण! अपनी कथा समझाकर कहिए ॥2॥

*** प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥ पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥3॥

भावार्थ:-प्रभु को पहचानकर हनुमान्‌जी उनके चरण पकड़कर पृथ्वी पर गिर पड़े (उन्होंने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया)। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित है, मुख से वचन नहीं निकलता। वे प्रभु के सुंदर वेष की रचना देख रहे हैं!॥3॥

*** पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥ मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥4॥

भावार्थ:-फिर धीरज धर कर स्तुति की। अपने नाथ को पहचान लेने से हृदय में हर्ष हो रहा है। (फिर हनुमान्‌जी ने कहा-) हे स्वामी! मैंने जो पूछा वह मेरा पूछना तो न्याय था, (वर्षों के बाद आपको देखा, वह भी तपस्वी के वेष में और मेरी वानरी बुद्धि इससे मैं तो आपको पहचान न सका और अपनी परिस्थिति के अनुसार मैंने आपसे पूछा), परंतु आप मनुष्य की तरह कैसे पूछ रहे हैं?॥4॥

*** तव माया बस फिरउँ भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥5॥

भावार्थ:-मैं तो आपकी माया के वश भूला फिरता हूँ इसी से मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहचाना ॥5॥

दोहा :

***एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥2॥
भावार्थ:-एक तो मैं यों ही मंद हूँ, दूसरे मोह के वश में हूँ, तीसरे हृदय का कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबंधु भगवान्! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुला दिया!॥2॥

चौपाई :
*** जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥1॥
भावार्थ:-एहे नाथ! यद्यपि मुझ में बहुत से अवगुण हैं तथापि सेवक स्वामी की विस्मृति में न पड़े (आप उसे न भूल जाएँ)। हे नाथ! जीव आपकी माया से मोहित है। वह आप ही की कृपा से निस्तार पा सकता है॥1॥
*** ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥ सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥2॥
भावार्थ:-उस पर हे रघुवीर! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ किमैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता। सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे निश्चिंत रहता है। प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करते ही बनता है (करना ही पड़ता है)॥2॥
*** अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई॥ तब रघुपति उठाई उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥3॥
भावार्थ:-ऐसा कहकर हनुमान्‌जी अकुलाकर प्रभु के चरणों पर गिर पड़े, उन्होंने अपना असली शरीर प्रकट कर दिया। उनके हृदय में प्रेम छा गया। तब श्री रघुनाथजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर शीतल किया॥3॥
*** सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥ समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥4॥
भावार्थ:-(फिर कहा-) हे कपि! सुनो, मन में ग्लानि मत मानना (मन छोटा न करना)। तुम मुझे लक्ष्मण से भी दूने प्रिय हो। सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं (मेरे लिए न कोई प्रिय है न अप्रिय) पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा सहारा नहीं होता)॥4॥
दोहा :
*** सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥3॥

भावार्थ:-और हे हनुमान्! अनन्य वही है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान् का रूप है॥3॥

चौपाई :

*** देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला॥नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥1॥

भावार्थ:-स्वामी को अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवन कुमार हनुमान्‌जी के हृदय में हर्ष छा गया और उनके सब दुःख जाते रहे। (उन्होंने कहा-) हे नाथ! इस पर्वत पर वानरराज सुग्रीव रहते हैं, वह आपका दास है॥1॥

*** तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥ सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥2॥

भावार्थ:-हे नाथ! उससे मित्रता कीजिए और उसे दीन जानकर निर्भय कर दीजिए। वह सीताजी की खोज करवाएगा और जहाँ-तहाँ करोड़ों वानरों को भेजेगा॥2॥

*** एहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥ जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥3॥

भावार्थ:-इस प्रकार सब बातें समझाकर हनुमान्‌जी ने (श्री राम-लक्ष्मण) दोनों जनों को पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने श्री रामचंद्रजी को देखा तो अपने जन्म को अत्यंत धन्य समझा॥3॥

*** सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥ कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती॥4॥

भावार्थ:-सुग्रीव चरणों में मस्तक नवाकर आदर सहित मिले। श्री रघुनाथजी भी छोटे भाई सहित उनसे गले लगकर मिले। सुग्रीव मन में इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे?॥4॥